जैन साहित्य एवं संस्कृति के विकास में भट्टारकों का योगदान

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

भगवान महावीर के पश्चात् होनेवाले अधिकांश आचार्यों ने साहित्य निर्माण में विशेष रुचि ली और उसके प्रचार-प्रसार के लिए अथक् परिश्रम किया। प्राकृत भाषा के साथ-साथ उन्होंने संस्कृत, अपभ्रंश एवं प्रादेशिक भाषाओं को भी प्रश्रय दिया और जन-साधारण की रुचि के अनुसार विविध विषयों में विशाल साहित्य का सर्जन किया। ऐसे आचार्यों में आचार्य कुन्दकुन्द (प्रथम शताब्दी), उमा स्वामी (तृतीय शताब्दी) समन्तभद्र (तृतीय-चतुर्थ शताब्दी), सिद्धसेन (पंचम शताब्दी), देवनन्दि, पात्रकेसरी, अकलंक (सातवीं शताब्दी), वीर सेन (आठवीं शताब्दी) विद्यानन्दि माणिक्य नन्दि, जिनसेन, गुणभद्र, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, अमृत चन्द्र, देवसेन, पद्मनन्दि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी आचार्य अपने-अपने समय के अत्यधिक ओजस्वी एवं सशक्त विद्वान् थे।

लेकिन जब देश की राजनैतिक एकता समाप्त होने लगी और सम्राट हर्षवर्धन के बाद जब कोई भी शासक देश को एकता के सूत्र में बांधने में असमर्थ रहा तब देश में एकता के स्थान पर अनेकता ने सिर उठाया। चारों ओर अशान्ति का वातावरण छाने लगा। 11वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे और 13वीं शताब्दी के आते-आते वहाँ मुसलमानों का हमेशा के लिये शासन स्थापित हो गया। देश में आतंक का साम्राज्य छा गया। मुसलमानों के भयपूर्ण शासन में अहिंसकों का जीना दूभर हो गया। नग्न साधुओं का विहार और भी कठिन हो गया। मन्दिरों को लूटना, मूर्तियों को तोड़ना एवं स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों को मौत के घाट उतारना साधारण-सी बात हो गयी। ऐसे समय में बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में नन्दि संघ के भट्टारक प्रभाचन्द्र ने दिल्ली में अपना केन्द्र स्थापित किया और इस प्रकार सारे उत्तर भारत में भट्टारक परम्परा को नव स्वरूप प्रदान किया।

भट्टारक प्रभा चन्द्र (संवत् 1314 से 1408) के पश्चात् सारे देश में भट्टारकों ने शनैःशनैः लोकप्रियता प्राप्त की और एक-के-पश्चात् एक दूसरे प्रान्तों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में भट्टारक गादियाँ स्थापित होने लगीं । राजस्थान में चित्तौड़, चम्पावती, तक्षकगढ़, आमेर, सांगानेर, जयपुर, श्री महावीर जी, अजमेर, नागौर, जोवनेर, मध्यप्रदेश में ग्वालियर एव सोनागिरि जी, बागड़प्रदेश में डूंगरपुर, सागवाड़ा, बासवाड़ा एवं रिषभदेव, गुजरात में नवसारी, सूरत, खम्भात, घोघा, गिरनगर, महाराष्ट्र में कारंजा एवं नागपुर, दक्षिण में मूडबिद्री, हुम्मच एवं श्रवण बेलगोला आदि स्थानों में भट्टारकों की गादियाँ स्थापित हो गयीं । इन भट्टारकों ने अपने-अपने गण संघ व गच्छ स्थापित कर लिए । अपने प्रभाव से क्षेत्र बाँट लिए और अपनी-अपनी सीमाओं में धर्म के एक-मात्र स्तम्भ बन गये । 16वीं शताब्दी में देहली गादी के भट्टारकों ने अपने ही अधीन मंडलाचार्य पद बनाये जो भट्टारकों की ओर से प्रतिष्ठा, पूजा एवं समारोह आदि का नेतृत्व करने लगे ।

इन भट्टारकों ने जैन साहित्य और संस्कृति के विकास में अपना महत्वपूर्ण योग दिया । 1350 से 1850 तक भट्टारक ही आचार्य, उपाध्याय एवं मुनि रूप में जनता द्वारा पूजे जाते रहे तथा जैन संस्कृति के प्रधान स्तम्भ रहे । इन 500 वर्षों में जितने भी प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित हुए उनमें इनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद ने जबरदस्त कार्य किया । संवत् 1548, 1664, 1783, एवं 1826 में देश में विशाल प्रतिष्ठा समारोह आयोजित हुए, इन सब में भट्टारकों का बोल बाला रहा । हजारों मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित होकर देश के विभिन्न मन्दिरों में विराजमान की गईं । उत्तर भारत के अधिकांश जैन मन्दिरों में आज इन संवतों में प्रतिष्ठापित मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं । आज सारा बागड़प्रदेश 'मालवा' कोटाबूंदी एवं झालावाड़ का प्रदेश, चम्पावती, टोड़ा-राम सिंह एवं रणथम्भौर का क्षेत्र जितना जैन पुरा-तत्व से समृद्ध है उतना देश का अन्य क्षेत्र नहीं । संवत् 1548 में भट्टारक जिनचन्द्र ने मुंडासा नगर में हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवा कर सारे देश में जैन संस्कृति के प्रचार-प्रसार में विशेष योग दिया । देश के गाँव-गाँव में मन्दिरों का निर्माण हुआ जिसमें संस्कृति ही पुनर्जीवित नहीं हुई अपितु मूर्तिकला, स्थापत्यकला आदि कलाओं को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । 1664 में मोजमाबाद (राजस्थान) में तीन शिखरोंवाले मन्दिर के जीर्णोद्धार के पश्चात् जो विशाल प्रतिष्ठा हुई थी उसे तो बादशाह अकबर एवं आमेर के महाराज मानसिंह का भी आशीर्वाद प्राप्त था । करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया गया : इसी तरह 1826 में सवाई माधोपुर के भट्टारक सुरेन्द्र कीर्ति के तत्वाधान व प्रेरणा से जो अभूतपूर्व प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित हुआ संभवतः वह अपने ढंग का पहला महोत्सव था । राजस्थान में आज कोई ऐसा मन्दिर नहीं है जिसमें 1826 में प्रतिष्ठापित मूर्ति न हो । जयपुर, सागवाड़ा, चाँदखेड़ी, झालरापाटन में जो विशाल एवं कलापूर्ण मूर्त्तियाँ हैं उन सबकी प्रतिष्ठा में इन भट्टारकों का प्रमुख हाथ था ।

जब इन भट्टारकों की कीर्ति अपनी चरम सीमा पर पहुंचने लगी तो इनकी निशेधिकाएँ व कीर्तिस्तम्भ बनने लगे । आवां (राजस्थान) में पहाड़ पर भट्टारक प्रभाचन्द्र, जिनचन्द्र और शुभचन्द्र की इसी तरह की तीन निषेधिकाएँ हैं जो भट्टारकों में तत्कालीन जनता की श्रद्धा एवं भावना को व्यक्त करनेवाली हैं । इसी तरह चित्तौड़ किले में प्रतिष्ठापित कीर्तिस्तम्भ चाकसू में बनवाया गया जिसमें भट्टारकों की मूर्त्तियों के अति-रिक्त उनके होने का भी समय दिया हुआ है । इसी तरह का कीर्तिस्तम्भ आमेर के बाहर की बस्ती में स्थापित किया हुआ है । ये सब कीर्तिस्तम्भ भट्टारकों के उत्कर्ष के तो प्रमाण हैं ही किन्तु उनके द्वारा सम्पा-दित सांस्कृतिक सेवाओं को भी घोषित करनेवाले हैं ।

जयपुर के काला छावड़ा के मन्दिर में पार्श्वनाथ की एक धातु की मूर्त्ति है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् 1413 में वैशाख सुदी 6 के दिन हुई थी । इसमें भट्टारक प्रभाचन्द्र का उल्लेख हुआ है । इसी तरह आवां तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बयाना में संवत् 1400 तथा 1404 की मूर्त्तियां हैं जिसमें भट्टारक प्रभाचन्द्र एवं उनके शिष्य पद्मनन्दि दोनों का उल्लेख किया गया है। भट्टारक पद्मनन्दि (संवत् 1385 से 1450) को गुजरात में प्रतिष्ठा महोत्सव के संचालन के लिए ही भट्टारक पद पर स्थापित किया गया। कविवर वख्तराम शाह ने अपने बुद्धि विलास में निम्न प्रकार व्यक्त किया है–

सवत् तेरह सौ पिचिहत्तर्यौ जानि वै
भये भट्टारक प्रभाचन्द्र गुनखानि वै।
तिनको आचारिज इक हो गुजरात में,
तहाँ सवै पंचनि मिलि ठानी बात में।।
कीजै इक प्रतिष्ठा तो सुभ काज ह्वै
करन लगे विधिवत सब ताकौ साज वै
भट्टारक बुलवाये तो पहुँचे नहीं,
तवै सबै पंचनि मिलि यह ठानी सही।
सूरि मंच वाहि आचारिज को दियो।
पद्मनन्दि भट्टारक नाम सु यह कियौ।।

भट्टारक पद्मनन्दि द्वारा प्रतिष्ठित सैंकड़ों मूर्त्तियाँ राजस्थान में मिलती हैं।[1] सांगानेर के संघीजी के मन्दिर में इन्हीं के द्वारा प्रतिष्ठापित शान्तिनाथ स्वामी की मूर्त्ति है जिसकी प्रतिष्ठा संवत् 1464 में हुई थी। इसी संवत् की प्रतिष्ठित मूर्ति पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर में टौंक में विराजमान है। भट्टारक सकल कीर्ति ने अपने जीवन में 14 बिम्ब प्रतिष्ठाओं का संचालन किया था। इनके द्वारा संवत् 1490, 1492 एवं 1497 में प्रतिष्ठापित मूर्त्तियाँ उदयपुर, डूंगरपुर एवं सागवाड़ा के जैन मन्दिरों में मिलती हैं। संवत् 1548 में जीवराज पापड़ीवाल ने जो विशाल प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न कराया था उस महोत्सव के प्रधान थे भट्टारक जिनचन्द्र। सर्वप्रथम इन्होंने संवत् 1502 में बैशाख सुदी 3 के दिन पार्श्वनाथ प्रतिमा की स्थापना करवायी थी। इसके अगले वर्ष संवत् 1503 में प्रतिष्ठापित चौबीसी की एक प्रतिमा जयपुर के एक मन्दिर में विराजमान की। संवत् 1504 में नगर (राजस्थान) में आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव में भाग लिया था। इन्हीं भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य भट्टारक प्रभाचन्द्र द्वितीय ने कितने ही मन्दिरों के निर्माण एवं प्रतिष्ठा महोत्सवों को अपना आशीर्वाद दिया था। मंडलाचार्य धर्मचन्द जो भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रमुख शिष्य थे, ने, आवां (राजस्थान) में संवत् 1583 में जिस विशाल प्रतिष्ठा समारोह का नेतृत्व किया था वह इतिहास में अपना विशेष स्थान रखती है। धर्मचन्द्र ने भट्टारक जिनचन्द्र का निम्न शब्दों में स्मरण किया है—

तत्पट्टस्थ-श्रुताधारी प्रभाचन्द्र त्रिया निधिः।
दीक्षितो पो लसत्कीर्तिः प्रचण्ड पण्डिता गुणी।।

सोमकीर्ति अपने समय के लोकप्रिय भट्टारक थे। संवत् 1527, 1532, 1536, एवं 1540 में इनके द्वारा प्रतिष्ठित कितनी ही मूर्तियाँ राजस्थान के विभिन्न मन्दिरों में उपलब्ध होती हैं। अपने समय के मुसलमान शासकों से इनका अच्छा सम्बन्ध था। 16वीं शताब्दी में भट्टारक ज्ञानभूषण भट्टारक सकलकीर्ति परम्परा में अत्याधिक प्रभावशाली भट्टारक हुए जिन्होंने प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार, नवीन मन्दिर निर्माण, पंच कल्याणक प्रतिष्ठाएँ सांस्कृतिक समारोह, उत्सव एवं मेलों आदि के आयोजनों को प्रोत्साहित किया। इनके द्वारा संवत् 1531, 1534, 1535, 1540, 1543, 1544, 1545, 1552, 1557 व 1560 तथा 1561, में प्रतिष्ठापित सैंकड़ों मूर्त्तियाँ बागड़ प्रदेश के नगरों में उपलब्ध होती हैं।[2]

1. मूर्ति लेख संग्रह भाग 1 पृष्ठ 68 एवं भाग 2 पृष्ठ सं. 305 (महावीर भवन जयपुर द्वारा संग्रहित)।
2. वीर शासन के प्रभावक आचार्य——पृष्ठ सं. 135

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भट्टारक ज्ञानभूषण के समान भ. विजयकीर्ति का भी अपने समय में बहुत ही प्रभाव था । इनके काल में कितने ही मन्दिरों का निर्माण हुआ तथा संवत् 1557, 60, 61, 64 68, 70 में जो प्रतिष्ठा महोत्सव हुए, उनके सम्पादन में इनका विशेष योग रहा। भट्टारक विजयकीर्ति राजस्थान एवं गुजरात के कितने ही शासकों द्वारा सम्मानित थे । एक गीत में भ. विजय कीर्ति की निम्न प्रकार प्रशंसा की गई :—

अनेक राजा चरण सेखि मालवी मेवाड़
गूजर सोरठ सिन्धु सहिजी अनेक भड भूपाल ।
दक्षण मरहठ चीण कुंकण पूरवि नाम प्रसिद्ध ।
छत्रीस लक्षण कला बहुतरि अनेक विद्यावारिधि ।

भ. विजयकीर्ति के पश्चात् और भी अनेक भट्टारक हुए जिनमें भ. शुभ चन्द्र, भ. रत्नकीर्ति, भ. कुमुदचन्द्र, भ. चन्द्रकीर्ति, भ. देवेन्द्रकीर्ति (प्रथम) भ. देवेन्द्रकीर्ति (द्वितीय) आदि कितने ही भट्टारक हुए जिन्होंने देश व समाज के सांस्कृतिक विकास में जबरदस्त योग दिया। संवत् 1664 में तीन विशाल शिखरों से युक्त आदिनाथ के मन्दिर के निर्माण और उसकी भव्य प्रतिष्ठा समारोह में भ. देवेन्द्रकीर्ति (द्वितीय) का प्रमुख योगदान था । इस समारोह में भव्य और विशाल आकार की मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित की गयीं जो आज भी देश के विभिन्न मन्दिरों में विराजमान हैं।[3] वास्तव में इन 500 वर्षों में (संवत् 1350 से 1850 तक) इन भट्टारकों का जैन संस्कृति के विकास में योगदान रहा ।

साहित्यक क्षेत्र के विकास में भट्टारकों का योगदान सर्वाधिक उल्लेखनीय है । भट्टारक सकल कीर्ति एवं उनकी परम्परा के अधिकांश विद्वान्, साहित्य सेवी थे। भट्टारक रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, सोमकीर्ति, जय सागर, भट्टारक महीचन्द्र आदि पचासों भट्टारकों ने साहित्य निर्माण में अत्यधिक रुचि ली थी । जब साहित्य का निर्माण, शास्त्र भण्डारों की स्थापना, नवीन पाण्डुलिपियों का लेखन एवं उनका संग्रह आदि सभी इनके अद्वितीय कार्य थे । आज भी जितना अधिक संग्रह भट्टारकों के केन्द्रों पर मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। अजमेर, नागौर एवं आमेर जैसे नगरों में स्थित शास्त्र भण्डार इस तथ्य के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । ये भट्टारक ज्ञान की ज्वलंत मूर्त्ति थे । प्राकृत एवं अपभ्रंश के स्थान पर इन्होंने संस्कृत और हिन्दी में ग्रन्थ रचना को अधिक प्रोत्साहन दिया और स्वयं भी इन्हीं भाषाओं में साहित्य निर्माण करते रहे । वे साहित्य की किसी एक विधा से भी नहीं चिपके रहे किन्तु साहित्य के सभी अंगों को पल्लवित किया। उन्होंने चरित काव्यों के साथ साथ पुराण, काव्य, वेलि, रास, पंचासिका, शतक, पच्चीसी वावनी, विवाह लो, आख्यान, पद व गीतों की रचना में गहरी रुचि ली और संस्कृत व हिन्दी में सैंकड़ों रचनाओं का निर्माण करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया ।

भट्टारक सकल कीर्ति (15वीं शताब्दी) ने अपने जीवन के अन्तिम 22 वर्षों में 26 से भी अधिक संस्कृत एवं 8 राजस्थानी रचनाएँ लिखीं । वे संगीत, तथा छन्द शास्त्र में निपुण थे तथा अपनी कृतियों को जन-जन में प्रचार की दृष्टि से सरल एवं आकर्षक शैली में लिखते थे। सकल कीर्ति की प्रमुख रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

संस्कृत कृतियाँ :

आदि पुराण, उत्तर पुराण, नेमिजिन चरित्र, शान्ति नाथ चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र, वर्द्धमान चरित्र,

---

3. मूर्ति लेख संग्रह प्रथम भाग—पृष्ठ सं. 176 ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लिनाथ चरित्र, सद्भाषितावलि, जम्बू स्वामी चरित्र, श्रीपाल चरित्र, तत्वार्थसार दीपक सुकुमाल चरित्र ।

राजस्थानी कृतियाँ :

आराधना प्रतिबोधसार, नेमिश्वर गीत, मुक्तावलि गीत, णमोकारक गीत, सोलहकारण रास, सारसीखा मणिरास तथा शान्तिनाथ फागु ।[4]

आचार्य सोमकीर्ति (संवत् 1516-40) ने भी संस्कृत व हिन्दी को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया। इनकी सप्तव्यसन कथा, प्रद्युम्न चरित्र एवं यशोधर चरित्र संस्कृत में निबद्ध रचनाएँ हैं तथा गुर्वावलि, यशोधर रास, ऋषभनाथ की धूलि, त्रेपनक्रियागीत, आदिनाथ एवं मल्लगीत इनकी राजस्थानी कृतियाँ हैं। सभी कृतियाँ भाषा एवं शैली की दृष्टि से उत्तम रचनाएं हैं। कवि ने इन रचनाओं में जनसाधारण की भावनाओं को अच्छी तरह प्रदर्शित किया है तथा उसकी दृष्टि में वही नगर एवं ग्राम श्रेष्ठ माने जाने चाहिए जिनमें जीववध नहीं होता । सत्याचरण किया जाता हो तथा नारी समाज का जहाँ अत्याधिक सम्मान हो । यही नहीं यहाँ के लोग अपने परिग्रह संचय की प्रतिदिन सीमा भी निर्धारित करते हों तथा जहाँ रात्रि को भोजन करना भी वर्जित हो ।

भ. सकल कीर्ति के शिष्य एवं लघु भ्राता बहन जिनदास संस्कृत एवं हिन्दी के प्रकाशमान नक्षत्र हैं। उन्होंने हिन्दी की सबसे अधिक सेवा की और उसमें 60 से भी अधिक कृतियाँ निबद्ध करके इस दिशा में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। उनकी रामसीतारास (संवत् 1520) राजस्थानी की प्रथम रामायण है जो छन्द संख्या की दृष्टि से रामायण से भी बड़ी है । बहन जिनदास 15वीं शताब्दी के विद्वान् थे तथा मीरा व सूरदास के पूर्व ही उन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया तथा जन-साधारण की भाषा में सबसे अधिक रचनाएँ लिखीं । बहन जिनदास की हिन्दी की प्रमुख रचनाएँ निम्न प्रकार हैं —

राम सीतारास, यशोधररास, नागकुमाररास, परमहंसरास, आदि पुराणरास, हरिवंश पुराण, श्रेविक रास, जम्बू स्वामीरास, भद्रबाहु, चाऊदन्त सबन्धरास, धन्य कुमाररास, भविष्य दन्तरास, जीवन्धर रास. करकण्डुरास, पुष्पांजलिरास, सुभौम चक्रवर्तीरास, धनपालरास, सुदर्शनरास ।

ज्ञानभूषण भट्टारक भुवनकीर्ति के शिष्य थे । भट्टारक बनने से पूर्व ही वे साहित्य निर्माण में लग गये थे और भट्टारक पद छोड़ने के पश्चात् भी वे इसी दिशा में लगे रहे । आदीश्वर फाग उनकी सर्वश्रेष्ठ व परिष्कृत रचना है । इसमें 501 फाग हैं जिनमें 262 हिन्दी के तथा शेष 239 पद्य संस्कृत में निबद्ध हैं। आदीश्वर फाग के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाओं में पोषह रास, जलगालन रास तथा षटकर्म रास के नाम उल्लेखनीय हैं ।

17वीं शताब्दी में होनेवाले भट्टारकों में भट्टारक रत्नकीर्ति एवं भट्टारक कुमुदचन्द्र का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। ये गुरू व शिष्य दोनों ही बड़े लोकप्रिय सन्त थे तथा जन-जन में भगवद् भक्ति को उभारने के लिये छोटे-छोटे भक्तिपरक पदों की रचना किया करते थे। नेमि राजुल को लेकर भी दोनों ही

---

4. भो पूज्यो नृप मल्लि भैरव महादेवेन्द्र मुख्यै नृपै ।
षट्तर्कागम शास्त्र कोविद मति जाग्रत मशश्चन्द्रमा ।।
भव्याम्भोसह भास्करः शुभ करः संसार विच्छेदकः ।
सोऽव्याच्छ्री विजयादि कीर्ति मुनियो भदारकाधीक्षवरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवियों ने अनेक पदों की रचना की । रत्नकीर्ति के पदों की संख्या 38 है तथा कुमुदचन्द्र के भी इतने ही पद होंगे । रत्नकीर्ति का एक पद देखिये—

सखी री नेमि न जानी पीर ।

बहोत दिवाजे आये मेरे घरि, संग लेई हलधर वीर ।
नेमि मुख निरखि हरषी मनसूं, अब तो होई मन धीर ।
तामे पसूय पुकार सुनी करि, गयो गिरिवर के तीर ।
चन्दवदनी पोकारती डारती, मण्डन हार उर चीर ।
रत्नकीरती प्रभु भये वैरागी, राजुल चित्त कियो धीर ।

कुमुदचन्द्र के पदों में अध्यात्म, विरह और भक्ति तीनों का सामंजस्य है । 'मैं तो नर भव वारि गया यों' पद यदि अध्यात्मपरक है तो 'सखी री अब तो रह्यो नहिं जात, विरहपरक पद हैं । इन दोनों सन्तों ने हिन्दी साहित्य में जो पद साहित्य लिखने की परम्परा डाली वह भविष्य में होनेवाले कवियों के लिये वरदान सिद्ध हुई ।

16वीं 17वीं शताब्दी में एक और प्रभावशाली भट्टारक हुए जिनका नाम भ. शुभचन्द्र है । भ. शुभचन्द्र शास्त्रों के पूर्ण मर्मज्ञ थे । उन्हें षट्भाषा कवि चक्रवर्ती कहा जाता था । इन्होंने जो साहित्य सेवा अपने जीवन में की वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है । इन्होंने संस्कृत में 40 रचनाएँ तथा हिन्दी में 7 रचनाओं को निबद्ध करके भारतीय साहित्य की अभूतपूर्व सेवा की । इनकी सभी हिन्दी कृतियाँ लघु हैं किन्तु भाव व शैली की दृष्टि से उत्तम हैं "तत्व सार दूहा, इनकी सुन्दर कृति है । इसमें दोहे व चौपाई हैं । रचना छोटी होने पर भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं । एक स्थान पर आत्मा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा कि किसी की भी आत्मा उच्च अथवा नीच नहीं है । कर्मों के कारण ही उसे ऊँच व नीच की संज्ञा दी जाती है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है । आत्मा तो राजा है वह शूद्र कैसे हो सकती है ।

ऊँच नीच नवि अध हुयि, कर्म कलंक तणो कीतु सोई ।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य न शूद्र, अधा राजा नवि होय शूद्र ।

इनके पश्चात् एक के बाद एक भट्टारक होते गये । अजमेर, नागौर, आमेर, जयपुर, डूंगरपुर, गालिया कोट, कारंजा, उदयपुर आदि स्थानों में उनकी गादियाँ स्थापित हुई तथा वहीं से वे बिहार करके जन-जन में साहित्य के प्रति रुचि पैदा किया करते, अपने शिष्यों को साहित्य निर्माण की ओर प्रोत्साहित किया करते रहते । ब्र. जिनदास, ब्रह्मराय मल्ल, बख्तराम शाह, लक्ष्मीराम चाँदवाड़ा जैसे विद्वान् इन्हीं भट्टारकों के शिष्य थे जिन्होंने साहित्यिक विकास की ओर विशेष ध्यान दिया और देश के साहित्यिक पक्ष को मजबूत किया । इन भट्टारकों ने संस्कृत भाषा को अपना कर देश में उसे उच्च स्थान दिया तथा अपने काव्यों के माध्यम से उसे जन-सामान्य में लोक-प्रिय बनाया गया । एक ओर संस्कृत तथा दूसरी ओर हिन्दी राजस्थानी दोनों ही भाषाओं को अपनाकर इन्होंने साहित्य क्षेत्र में उदार वातावरण को स्थान दिया । वास्तव में 500 वर्षों तक इन भट्टारकों ने देश का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से जो विकास किया वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है । लेकिन अभी तक इनकी सेवाओं का जितना मूल्यांकन होना चाहिए था उतना नहीं हो सका है और उसकी महती आवश्यकता है ।

* *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org